Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

महेश दिवाकर की रचनाओं में राष्ट्रबोध

मुकेश
शोधार्थी, हिन्दी विभाग बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक
संजीव कुमार
शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक

शोध सार
प्रस्तुत अध्ययन का विषय "महेश दिवाकर की रचनाओं में राष्ट्रबोध" है, जिसमें उनके खंडकाव्यों के माध्यम से व्यक्त राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक दृष्टि और मानवीय मूल्यों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि महेश दिवाकर के यहाँ राष्ट्र की अवधारणा केवल राजनीतिक सत्ता, भू–सीमा या प्रशासनिक ढाँचे तक सीमित नहीं है, बल्कि वह इतिहास, संस्कृति, लोकजीवन, संघर्ष, न्याय, समानता और मानवीय गरिमा से निर्मित एक जीवंत नैतिक सत्ता के रूप में उपस्थित होती है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रबोध का स्वर भावुक देशभक्ति तक सीमित न रहकर सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक संवेदना, लोकचेतना, स्त्री सम्मान, दलित–बहुजन अस्मिता, श्रमशील वर्गों की प्रतिष्ठा तथा बहुलतावादी भारतीयता के रूप में विकसित होता है। अध्ययन में यह भी रेखांकित किया गया है कि महेश दिवाकर अपने खंडकाव्यों में ऐसे पात्रों और प्रसंगों को केंद्र में लाते हैं जो मुख्यधारा के इतिहास और साहित्य में प्रायः हाशिए पर रहे हैं। इस प्रकार उनका काव्य राष्ट्र की नई व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिसमें सबसे वंचित और उपेक्षित मनुष्य भी राष्ट्र की मूल शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होता है। साथ ही, भारतीय संस्कृति और खंडकाव्य की परंपरा के संबंध को स्पष्ट करते हुए यह बताया गया है कि खंडकाव्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, लोकस्मृतियों, नैतिक संघर्षों और राष्ट्रीय आदर्शों की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। महेश दिवाकर की भाषा, शैली, लोकाभिमुखता और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति उनके राष्ट्रबोध को और अधिक प्रभावशाली बनाती है। अतः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महेश दिवाकर का काव्य राष्ट्र, समाज और संस्कृति के संबंधों को अधिक व्यापक, न्यायपूर्ण और मानवीय परिप्रेक्ष्य में समझने का महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः महेश दिवाकर, राष्ट्रबोध, खंडकाव्य, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय चेतना, लोकचेतना, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्य, सांस्कृतिक बहुलता, मानवीय संवेदना

परिचय
महेश दिवाकर की रचनाओं में व्यक्त राष्ट्रबोध को समझने के लिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि उनके यहाँ "राष्ट्र" केवल राजनीतिक सत्ता, भू–सीमा या प्रशासनिक ढाँचे

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

का नाम नहीं है, बल्कि भारतीय इतिहास, संस्कृति, लोक–जीवन, संघर्ष और मानवीय मूल्यों से निर्मित एक सजीव नैतिक सत्ता है। भारतीय साहित्यिक परंपरा में भी राष्ट्रबोध का अर्थ केवल स्वतंत्रता–आंदोलन से जुड़ी भावुक देशभक्ति नहीं रहा, बल्कि यह एक दीर्घ सांस्कृतिक यात्रा का परिणाम है जिसमें वेद–पुराणों से लेकर रामायण–महाभारत, भक्ति–काव्य, वीर–गाथाएँ, आधुनिक और उत्तर–आधुनिक कविता तक – सब मिलकर राष्ट्र की सामूहिक चेतना को आकार देते हैं। इसी परंपरा के भीतर महेश दिवाकर अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रबोध को एक नए तेवर, नए परिप्रेक्ष्य और नए संवेदनात्मक विस्तार के साथ सामने लाते हैं। उनके लिए राष्ट्रबोध का अर्थ है – इतिहास के प्रति सजग दृष्टि, वर्तमान की विषमताओं के प्रति तीक्ष्ण संवेदनशीलता और भविष्य के प्रति उत्तरदायी संकल्प; इसलिए उनकी रचनाओं में राष्ट्र कहीं दूर बैठा कोई अमूर्त आदर्श नहीं, बल्कि जन–जीवन की धड़कनों में बसने वाली जीवंत शक्ति के रूप में प्रकट होता है।[1] दिवाकर अपने खण्डकाव्यों में उन पात्रों और प्रसंगों का चयन करते हैं जो राष्ट्र के पारंपरिक विमर्श में अक्सर हाशिए पर रहे हैं – ग्रामीण स्त्रियाँ, लोक–वीरांगनाएँ, दलित–बहुजन अस्मिता, पहाड़ी और सीमावर्ती इलाकों के संघर्षशील चरित्र, किसानों और श्रमिकों का मौन श्रम – ये सभी उनके राष्ट्रबोध को जन–केंद्रित और मूल्य–केंद्रित बनाते हैं। वे इतिहास की भूमि पर खड़े होकर वर्तमान से संवाद करते हैं, इसलिए उनके खण्डकाव्य केवल अतीत की गौरव–कथा नहीं गाते, बल्कि यह पूछते भी हैं कि उस गौरव की रोशनी आज के शोषित, उपेक्षित और पीड़ित मनुष्यों तक क्यों नहीं पहुँच पाती। दिवाकर के लिए राष्ट्र की असली कसौटी यह है कि वह अपने सबसे कमजोर, सबसे वंचित नागरिक के साथ कैसा व्यवहार करता है, यदि राष्ट्र केवल विजेताओं, राजाओं और शासकों की महिमा तक सीमित रह जाए और किसान, मजदूर, दलित, स्त्री, आदिवासी और साधारण नागरिक उसकी परिधि पर खड़े रह जाएँ, तो ऐसा राष्ट्रबोध अधूरा और नैतिक रूप से संदिग्ध है। इसी कारण वे अपने खण्डकाव्यों में वीर–रस और शौर्य के साथ–साथ करुणा, सहअस्तित्व, न्याय और लोकतांत्रिक संवेदना को भी समान महत्व देते हैं। उनके लोकनायक और लोकनायिकाएँ केवल युद्धभूमि में तलवार भाँजने वाले योद्धा नहीं, बल्कि आत्मगौरव, स्वाधीनता बोध, त्याग, श्रम और नैतिक धैर्य से युक्त ऐसे चरित्र हैं जो पाठक को यह एहसास कराते हैं कि राष्ट्र की रीढ़ वहीं लोग हैं जो बिना किसी प्रसिद्धि के चुपचाप अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। दिवाकर का राष्ट्रबोध बहुलतावादी और समन्वयवादी भी है, उनकी रचनाओं में विभिन्न प्रदेशों, भाषाओं, जातियों, वर्गों और संस्कृतियों के स्वर एक साथ गूँजते हैं, मानो वे यह कहना चाहते हों कि भारत नामक राष्ट्र किसी एक

[1] डॉ० राजेन्द्र कुमार, हिन्दी कविता में राष्ट्रबोध, पृ० 58

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

रंग, एक भाषा या एक नस्ल की बपौती नहीं, बल्कि अनेक रंगों, अनेक परंपराओं और अनेक स्मृतियों से बनी एक साझा विरासत है। वे परंपरा का सम्मान करते हुए भी जड़ रूढ़ियों का विरोध करते हैं और इस प्रकार राष्ट्र की अवधारणा को प्रतिक्रियावादी संकीर्णता से निकालकर प्रगतिशील, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों के धरातल पर स्थापित करते हैं। समता, स्वतंत्रता, बंधुता और न्याय जैसे संवैधानिक आदर्श उनके राष्ट्रबोध की आंतरिक धारा के रूप में उपस्थित रहते हैं, भले ही वे हर बार नारे के रूप में मुखर न हों। भाषा और शैली के स्तर पर भी महेश दिवाकर अपने राष्ट्रबोध को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अंकित करते हैं। उनकी भाषा न तो अत्यधिक दुरूह और अलंकार प्रधान है, न ही इतनी सपाट कि उसमें कोई कलात्मक ऊँचाई न बचे; वे सरल, प्रवाहमान और लोकनिकट हिंदी का प्रयोग करते हैं जिसमें लोक कथाओं, कहावतों, मुहावरों, संवादों और बोलचाल के तरीके स्वाभाविक रूप से घुल–मिल जाते हैं। इससे उनकी कविताएँ केवल विद्वान पाठकों के लिए नहीं, बल्कि आम जन–जीवन के लिए भी अर्थवान और आत्मीय हो उठती हैं। चरित्रों की मनःस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण, कथानक की नाटकीयता, दृश्यबिंबों की सजीवता और संवाद योजना की सहजता – ये सब मिलकर उनके राष्ट्रबोध को केवल वैचारिक विमर्श न रहने देकर एक अनुभूत यथार्थ में बदल देते हैं। उनकी कविता पाठक से केवल यह नहीं कहती कि राष्ट्र से प्रेम करो, बल्कि यह भी दिखाती है कि राष्ट्र से सच्चा प्रेम तभी है जब हम अन्याय, शोषण, असमानता और हिंसा के विरुद्ध खड़े हों, अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहें और दूसरों के अधिकारों का सम्मान करें। इस प्रकार "महेश दिवाकर की रचनाओं में राष्ट्रबोध" विषय की भूमिका यह स्पष्ट करती है कि दिवाकर का काव्य–लोक हमें राष्ट्र की ऐसी समग्र अवधारणा देता है जिसमें इतिहास बोध, सांस्कृतिक स्मृति, लोक संवेदनाएँ, लोकतांत्रिक आदर्श, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और मानवीय गरिमा सब एक साथ उपस्थित हैं। उनकी रचनाएँ यह संदेश देती हैं कि राष्ट्र की असली शक्ति उसकी सेनाओं, शस्त्रागारों या सीमाओं की कड़ाई में नहीं, बल्कि उसके नागरिकों की संवेदना, नैतिकता, श्रमनिष्ठा और पारस्परिक विश्वास में निहित है। इसलिए महेश दिवाकर के खण्डकाव्य केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की वैचारिक कार्यशाला भी हैं, जहाँ कविता के माध्यम से नागरिक चेतना का सृजन होता है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी काव्य में राष्ट्रबोध की चर्चा महेश दिवाकर के उल्लेख के बिना अधूरी मानी जानी चाहिए और उनकी रचनाओं का गहन अध्ययन हमें राष्ट्र, साहित्य और समाज के त्रिकाल संबंध को अधिक व्यापक, अधिक न्यायपूर्ण और अधिक मानवीय दृष्टि से समझने में सहायक सिद्ध होता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

भारतीय संस्कृति और खण्डकाव्य

भारतीय संस्कृति मूलतः एक समन्वयशील, बहुलतावादी और आध्यात्मिक संस्कृति है, जिसमें धर्म केवल पूजा पद्धति नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों, आचरण, कर्तव्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व का मार्गदर्शक रहा है। 'संस्कृति' शब्द के अर्थ एवं परिभाषा पर विचार करने से पूर्व 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पति पर विचार करना उपयोगी है। 'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्व कृ धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगने से बना है। [2]सम् का अर्थ है– 'सम्यक रूप से' और कृ धातु 'करने के अर्थ में' प्रयुक्त होती है। इस प्रकार सम्यक् रूप से किए गए कार्यों की श्रृंखला ही संस्कृति है। सभ्यता, आचार–विचार, शुद्धि, संस्कार, परिष्कार आदि संस्कृति के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं।

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में 'संस्कृति' शब्द मूल रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – शुद्ध, सफाई, संस्कार, सुधार, मानसिक विकास, सभ्यता, सजावट आदि हैं। पृथ्वीकुमार अग्रवाल के अनुसार – ''संस्कृति का पर्याय 'कल्चर' लैटिन के शब्द 'कुल्तुस (ब्न्स्ज्ै)' से निर्मित है जिसका प्राचीन अर्थ 'कृषि करना' या 'जुताई करना' था। आजकल यह शब्द आचरण के परिष्कार के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार से भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए उसमें से अतिरिक्त पेड़–पौधों, घास–फूस या कूड़ा–कर्कट आदि अनावश्यक खरपतवार को निकालकर उसे सुविकसित करके अच्छी कृषि के लिए तैयार किया जाता है। उसी प्रकार से मानव मन के विकारों का परिष्कार करके उसे उत्तम और संस्कारित बनाया जाता है, इसी को संस्कृति कहा जाता है। भूमि को भली प्रकार से साफ करके ही उसमें बीजवपन किया जाता है तदुपरान्त उत्तम फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने हेतु मानव के अन्तःकरण की शुद्धि अर्थात् परिष्कार व परिमार्जन अत्यावश्यक है। [3]अतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार से बीज अनेक संघर्षो व विषम परिस्थितियों का सामना करता हुआ अंकुरित होता है, वैसे ही संस्कृति भी अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करके मानव मन को विकारों से मुक्त करती हुई उसे संस्कारित करती है। परिणामस्वरूप मनुष्य अपने मन के विकारों से मुक्त होकर सुसंस्कृत बनता है। अर्थात् शील, शक्ति व सुन्दरता से अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाता है।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पति 'संस्कार' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है किसी के दोष या विकार को नष्ट करके उसका परिष्कार व परिमार्जन करके उसको सुधारना, उत्तम

[2] डॉ० पृथ्वी कुमार अग्रवाल, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ० 2

[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय संस्कृति, पृ० 112

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

बनाना आदि। अतः संस्कृति का अर्थ हुआ संस्कार की हुई अर्थात् उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। उपर्युक्त विचारों में सुधार तथा परिष्कार को संस्कृति की मूल चेतना माना गया है। साधारण बोलचाल की भाषा में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ मनुष्य के आचार–विचार, रहन–सहन, वेशभूषा, खान–पान आदि से लिया जाता है। संस्कृति एक ऐसी जीवन पद्धति है जो मनुष्य को उदात्त विचारधारा से परिपूर्ण करती है। यह मनुष्य को पाशविकता, स्वार्थ भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषपूर्ण संकीर्ण विकारों से मुक्त करके उसे संस्कारयुक्त, सुसंस्कृत, परिष्कृत व सभ्य बनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी मानना है कि ''मानव की श्रेष्ठ–साधनाएं ही संस्कृति हैं।'' इस प्रकार मनुष्य की सबसे ऊँची साधना संस्कृति है। मानव स्वयं संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति मानव की वह सम्पति व पर्यावरण है जिसमें रहकर मनुष्य सामाजिक प्राणी बनने के साथ–साथ प्राकृतिक दशाओं को भी अपने अनुकूल बनाता है।[4]

संस्कृति से मनुष्य को उन्नत व उदात्त जीवन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। प्राचीनकाल में मनुष्य का रहन–सहन, खान–पान सब कुछ पशु सदृश्य ही था। तत्पश्चात मनुष्य ने अपने आप में सुधार लाना शुरू किया। जंगलों में नग्न रहने वाला मनुष्य अब टाट, छाल तथा कपास से निर्मित वस्त्रों का प्रयोग करने लगा। मनुष्य ने काम, क्रोध तथा अन्य कुवासनाओं में फँसे अपने मन का परिष्कार व परिमार्जन करके उसे संस्कारयुक्त बनाया। ईर्ष्या, लोभ, मोह, राग, द्वेष और कामवासना आदि सब प्रकृतिपरक गुण हैं। इन प्राकृतिक गुणों पर यदि काबू नहीं पाया जाता है तो मनुष्य और जानवर में कोई अन्तर नहीं रहता। परिणामस्वरूप मनुष्य ने इन प्राकृतिक कुवासनाओं पर नियंत्रण करते हुए अपने मन को नियंत्रित किया तथा अपनी संस्कृति को उज्ज्वल बनाया। मानव मन का यह परिष्कार ही संस्कृति है। इस प्रकार संस्कृति मनुष्य में मानवीय तत्वों को उभारकर उसे और अधिक सुन्दर, समृद्ध व उदात्त बनाने में सहायक है। अतः संस्कृति का अर्थ हुआ जब मनुष्य अपने मन को, मन में उत्पन्न कुरूप विचारों को परिष्कृत करता हुआ उन्हें शुद्ध व उज्ज्वल कर लेता है और उन्नति के मार्ग पर अग्रसित होता है, वही उसकी संस्कृति कहलाती है।[5] सामान्य अर्थ में संस्कृति उन गुणों को कहते हैं जो मनुष्य को परिष्कृत और समृद्ध बनाते हैं। इस प्रकार संस्कृति के व्युत्पत्यर्थ एवं कोशगत अर्थों पर विचार करने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि गतिशीलता परिवर्तन के माध्यम से विकसित होती है। प्रारम्भिक युग से लेकर अब तक

[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 233

[5] डॉ० रामविलास शर्मा, भारत की सांस्कृतिक एकता, पृ० 101

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

जीवन की गति को समझने की प्रक्रिया में निरन्तर विकास हुआ है, इसीलिए 'संस्कृति' शब्द के अर्थ में विकास होना स्वाभाविक है।

हिन्दी साहित्य, विशेषकर काव्य परंपरा, इस भारतीय संस्कृति का दर्पण भी है और साधन भी। महाकाव्य, खण्डकाव्य, वीरकाव्य, भक्तिकाव्य, लोककथाएँ और जन–गीत ये सब मिलकर भारतीय संस्कृति के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते रहे हैं। इनमें से खण्डकाव्य एक ऐसी विधा के रूप में उभरता है जो किसी एक केंद्रीय प्रसंग, चरित्र, ऐतिहासिक घटना या सांस्कृतिक–नैतिक द्वंद्व को केंद्र में रखकर विस्तृत काव्य रचना प्रस्तुत करता है, परंतु महाकाव्य की तरह अति विस्तार और बहु–प्रसंगता में नहीं उलझता। खण्डकाव्य का स्वरूप संक्षिप्त होते हुए भी गहन होता है, वह किसी विशेष क्षण, संघर्ष या व्यक्तित्व के माध्यम से पूरे युग, पूरी संस्कृति और व्यापक राष्ट्रीय चेतना का प्रतिनिधित्व करने लगता है। भारतीय संस्कृति और खण्डकाव्य का संबंध मूलतः "चरित्र केंद्रित सांस्कृतिक प्रस्तुति" के माध्यम से समझा जा सकता है। भारतीय परंपरा में आदर्श व्यक्तित्वों राम, सीता, कृष्ण, द्रौपदी, भीष्म, कर्ण, मीरा, कबीर, गुरु नानक, विभिन्न संतों संतोषियों और वीर पुरुषों/वीरांगनाओं के माध्यम से ही मूल्य संस्कार पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित होते रहे हैं। खण्डकाव्य इन्हीं चरित्रों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए किसी एक नायक या नायिका, किसी एक संघर्ष या किसी एक ऐतिहासिक प्रसंग को चुनता है और उसके माध्यम से साहस, त्याग, निष्ठा, राष्ट्र समर्पण, नारी गरिमा, धर्म–धीरज, लोकन्याय और सामाजिक संवेदना जैसे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को समग्रता में उकेरता है।[6] इस प्रकार खण्डकाव्य एक ओर तो लोक–स्मृति और इतिहास का पुनःआह्वान करता है, दूसरी ओर वर्तमान पाठक के सामने उन मूल्यों को जीवित, प्रासंगिक और विचारणीय रूप में रखता है।

भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी रही है कि उसने नारीशक्ति, लोकनायक, क्षेत्रीय संस्कृतियाँ और हाशिए के समुदायों को भी कम–से–कम आदर्श स्तर पर सम्मान और गौरव का स्थान देने की चेष्टा की है। खण्डकाव्य इस संभावित आदर्श को रचनात्मक रूप से सामने लाने की सबसे सुगठित विधाओं में से एक है क्योंकि इसमें कवि किसी विशिष्ट नारी चरित्र, किसी लोकवीर या किसी भूले बिसरे संघर्ष पुरुष/स्त्री को केंद्र में रखकर उसके माध्यम से संपूर्ण भारतीय संस्कृति की एक धारा को मूर्त रूप देता है। ऐसे पात्रों के जीवन संघर्ष में हमें स्त्री गरिमा, स्वाभिमान, लोकनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, प्रकृति अनुराग और स्वाधीनता प्रेम जैसी मूल्यपरक धाराएँ साफ दिखाई देती हैं, जो भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं। इसी संदर्भ में यह भी समझना आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति केवल अतीत पूजक या रूढ़िवादी

[6] डॉ० नामवर सिंह, संस्कृति और साहित्य, पृ० 57

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

दृष्टि का नाम नहीं, बल्कि संरचनात्मक चेतना भी इसका अहम हिस्सा है। उपनिषदों से लेकर आधुनिक विचारधारा तक, भारतीय मनीषा ने प्रश्न–संस्कृति, आत्ममंथन और अन्याय–विरोधी दृष्टि को भी अपनाया है। खण्डकाव्य ठीक इसी जगह पर बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठता है, क्योंकि वह इतिहास या परंपरा को केवल ज्यों–का–त्यों महिमामंडित नहीं करता, बल्कि पात्रों के भीतर चल रहे नैतिक संघर्षों, द्वंद्वों और निर्णय स्थितियों का चित्रण करते हुए पाठक को आत्ममूल्यांकन के लिए प्रेरित भी करता है।[7] इस प्रकार खण्डकाव्य भारतीय संस्कृति के उस जीवित पक्ष को सामने लाता है, जो अतीत की स्मृति के साथ–साथ वर्तमान की आलोचना और भविष्य के संकल्प से भी जुड़ा हुआ है।

भारतीय संस्कृति और खण्डकाव्य के बीच संबंध का एक और महत्वपूर्ण आयाम लोकसंस्कृति है। भारतीय संस्कृति केवल शास्त्रीय ग्रंथों और राज दरबारों की परंपरा में नहीं बसती, बल्कि ग्रामीण जीवन, लोकगीतो, कथाओं, कहावतों, मेले–ठेलों, पर्व–त्योहारों और सामूहिक अनुष्ठानों में भी धड़कती है। खण्डकाव्य जब किसी क्षेत्रीय लोक वीरांगना, ग्रामीण स्त्री, पहाड़ी युवती, दलित नायक या जन आन्दोलन के चरित्र को उठाता है, तो वह स्वतः ही भारतीय लोकसंस्कृति के रंग, गंध और लय को काव्य संरचना में शामिल कर लेता है। भाषा में लोकशब्दों का प्रयोग, संवादों की स्वाभाविकता, प्रसंगों में लोककथाओं की प्रतिध्वनि और बिंबों में प्रकृति संपृक्ति ये सभी खण्डकाव्य को भारतीय संस्कृति के अत्यंत निकट ला खड़ा करते हैं। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति और खण्डकाव्य का संबंध केवल विषयवस्तु का नहीं, बल्कि दृष्टिकोण, मूल्य व्यवस्था और अभिव्यक्ति शैली का भी संबंध है। खण्डकाव्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्व बहुलता, सह–अस्तित्व, धर्म–निष्ठा, त्याग–भाव, नारी–सम्मान, लोकनिष्ठा, करुणा और न्यायप्रियता को किसी एक संक्षिप्त परंतु प्रभावशाली कथानक में पिरो देता है। इस विधा में कवि को यह अवसर मिलता है कि वह एक सघन रचना भूमि के भीतर संपूर्ण सांस्कृतिक परंपरा की झलक दिखा सके और राष्ट्र चेतना, समाज चेतना तथा मानवीय चेतना तीनों को साथ–साथ स्वर दे सके। इन्हीं आधारों पर जब हम आगे चलकर महेश दिवाकर के खण्डकाव्यों का अध्ययन करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि वे भारतीय संस्कृति की इन्हीं विशिष्टताओं लोक आधार, नारी गरिमा, संघर्षनिष्ठा, न्यायप्रियता, बहुलतावाद और सह–अस्तित्व को अपने पात्रों, प्रसंगों और काव्यभाषा के माध्यम से रूपायित करते हैं। अतः "भारतीय संस्कृति और खण्डकाव्य" की यह सामान्य चर्चा आगे की उपधाराओं के लिए बुनियादी वैचारिक भूमि तैयार करती है, जहाँ महेश दिवाकर के कृतित्व में निहित सांस्कृतिक और राष्ट्रबोध परक तत्वों को और अधिक विशद रूप में विश्लेषित किया जा सकेगा।

[7] डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, लोक और साहित्य, पृ० 39

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि महेश दिवाकर की रचनाओं में व्यक्त राष्ट्रबोध पारंपरिक, संकीर्ण और केवल राजनीतिक अर्थों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक व्यापक, जीवंत, मानवीय और मूल्यपरक अवधारणा के रूप में सामने आता है। उनके काव्य में राष्ट्र केवल भूगोल, शासन या सत्ता का पर्याय नहीं, बल्कि इतिहास, संस्कृति, लोकजीवन, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक चेतना का समन्वित रूप है। यही कारण है कि उनका राष्ट्रबोध भावात्मक देशप्रेम के साथ–साथ नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक समता और मानवीय सहअस्तित्व की भावना को भी अभिव्यक्त करता है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि महेश दिवाकर ने अपने खंडकाव्यों में उन पात्रों, वर्गों और जीवन–सत्यों को प्रमुखता दी है जिन्हें सामान्यतः इतिहास और साहित्य की मुख्यधारा में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाता। ग्रामीण स्त्रियाँ, श्रमिक, किसान, दलित, बहुजन, सीमांत समुदाय और उपेक्षित जन उनके काव्य में केवल सहानुभूति के पात्र नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र की वास्तविक शक्ति और नैतिक आधार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। इस दृष्टि से उनका काव्य राष्ट्र की जनपक्षीय अवधारणा को सशक्त बनाता है।

भारतीय संस्कृति और खंडकाव्य की परंपरा के संदर्भ में भी महेश दिवाकर की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों जैसे त्याग, न्याय, करुणा, सहअस्तित्व, नारी गरिमा, लोकनिष्ठा और बहुलता को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा सरल, प्रवाहमयी, लोकानुकूल और प्रभावपूर्ण है, जिसके कारण उनके विचार केवल बौद्धिक विमर्श तक सीमित नहीं रहते, बल्कि संवेदनात्मक स्तर पर भी पाठक को प्रभावित करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि महेश दिवाकर की रचनाएँ राष्ट्रबोध को एक नए और अधिक मानवीय आयाम में प्रस्तुत करती हैं। उनका काव्य भारतीय संस्कृति, लोकसंवेदना और सामाजिक न्याय के आधार पर राष्ट्र की ऐसी कल्पना करता है जो समावेशी, लोकतांत्रिक और जीवनमूल्यपरक है। इस प्रकार महेश दिवाकर का काव्य समकालीन हिंदी साहित्य में राष्ट्रबोध की समझ को समृद्ध करने वाला एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अवदान है।